पंचम अध्याय

आधुनिक खण्डकाव्य : परिदृश्य-मूल्यांकन

कलापक्ष

काव्य के अन्तरंग का सम्बन्ध उसके भावपक्ष से है तथा बहिरंग का सम्बन्ध कलापक्ष से । काव्य में दोनों ही तत्वों का महत्व रहता है । "बहिरंग काव्य को उत्कर्षमय बनाते हैं तो अन्तरंग कलापक्ष अथवा बहिरंग को सार्थकता प्रदान करते हैं । काव्य के सम्बन्ध में एक प्राचीन रूपक है, जिसमें कविता की तुलना लावण्यमयी युवती से की गयी है । शब्दार्थ जिसका शरीर है, अलंकार आभूषण है, रीति अवयवों का गठन है, गुण स्वभाव और रस आत्मा है ।"[1] इस रूपक के अनुसार रस काव्य की आत्मा है तथा छन्द, शब्दार्थ, अलंकार, गुण, रीति, शैली आदि उसके बाह्यांग हैं । वस्तुतः अन्तरंग एवं बहिरंग काव्य के उत्कर्ष के पूरक ही रहते हैं दोनों के मणिकांचन संयोग से ही उत्कृष्ट काव्य का सृजन होता है । काव्य के अन्तरंग की भांति कलापक्ष का विवेचन भी महत्वपूर्ण है ।[2]

भाषाशैली

कलापक्ष या काव्य के बहिरंग पक्ष में भाषाशैली का ही सबसे महत्वपूर्ण स्थान रहता है । आधुनिक काल के पूर्व काव्यक्षेत्र में ब्रजभाषा का शासन चल रहा था, लेकिन द्विवेदी युग तक आते आते खड़ीबोली ने ब्रजभाषा को काव्य-भाषा के पद से अपदस्थ कर, स्वयं वह स्थान ले लिया । आधुनिक युग के प्रारंभ में कविवर श्रीधर पाठक ने 'एकान्तवासी योगी' नामक प्रबन्धकाव्य (अनुवाद) की खड़ीबोली में रचना करके, खड़ीबोली को काव्य क्षेत्र में स्थिर प्रतिष्ठा देने का महान् कार्य किया । आधुनिक काल में विरचित अधिकांश खंडकाव्यों की काव्यभाषा खड़ीबोली ही है । ब्रजभाषा में आधुनिक काल के प्रारंभ में कुछ खंडकाव्य लिखे गये । श्रीधर पाठक ने "द डेज़र्टेड विलेज" का अनुवाद 'ऊजड़ ग्राम' ब्रजभाषा में ही प्रस्तुत किया । प्रसाद जी का प्रेमपथिक ब्रजभाषा की सुमनोहर,

---

१-हिन्दी साहित्य कोश : सं० धीरेन्द्र वर्मा, भाग १, पृ० २२३.

२-"काव्य में कला का गौरव स्वतः सिद्ध है । वस्तुतः उसके मौलिक तत्व दो ही हैं --रस और कला । इस दृष्टि से कला का विवेचन काव्यशास्त्र में रस के विवेचन के समान ही महत्वपूर्ण है ।" --हिन्दी वक्रोक्तिजीवित, भूमिका, डा नगेन्द्र, पृ० २८२.

कोमल कांत पदावली में विरचित है । जगन्नाथदास रत्नाकर की कृत 'उद्धवशतक' की भाषा भी मधुर ब्रजभाषा है । छायावादोत्तर युग में आकर रामनारायण अग्रवाल ने अपने 'कूनरी' नामक खण्डकाव्य का प्रणयन ब्रजभाषा में किया । इस काल के अन्य सारे खण्डकाव्य खड़ीबोली में विनिर्मित हैं । अधिकांश काव्यग्रंथ सरल, सरस एवं प्रवाहशाली भाषा में है तो 'तुलसीदास', मौर्य विजय जैसे काव्यग्रंथों में तत्सम प्रधान समासयुक्त भाषा का प्रयोग हुआ है । भावाभिव्यक्ति में इन ग्रन्थों की भाषा सर्वथा सक्षम रही है । भाषा के माध्यम से ही प्रसंग, भाव, विचार अन्तर्द्वन्द्व आदि काव्य में व्यक्त हो जाते हैं । काव्य की भाषा कैसी हो, इसके लिए निश्चित नियम नहीं बना है, नियम बनाना कठिन भी है । किन्तु यह बताने में कोई दोष नहीं है कि लालित्य एवं अलंकार युक्त व्यंजक भाषा ही आदर्श काव्यभाषा है । भाषा सम्बन्धी विशेषता शब्दार्थ सम्बन्ध में ही निहित है । काव्य में स्पष्ट अर्थबोध की अपेक्षा लक्ष्यार्थ या व्यंग्यार्थ की महत्ता है । अभिधार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ ही अधिक आकर्षक है । कभी काव्य का शब्द प्रयोग उत्तम कोटि का रहता है जबकि वह व्यंग्यार्थ युक्त हो । 'जलाशय के स्थिर जल में कंकड़ मारने से जिस प्रकार दूरगामी आवर्तों का जन्म होता है, उसी प्रकार प्रत्येक व्यंजक शब्द सहृदय के मानस में अनेक भावावर्तों की सृष्टि करता है ।'[1] केवल शब्द जालों से कविता की सीमा नहीं बँधेगी । शब्दों का सुसंगत प्रयोग का सचमुच कलापक्ष में महत्वपूर्ण स्थान है । रीति एवं गुण भी भाषा के प्रमुख तत्व हैं । 'प्रसाद, ओज और माधुर्य अथवा वैदर्भी, गौड़ी और पांचाली के रूप में प्राचीन काव्यशास्त्र ने जिन भाषा तत्वों की ओर संकेत किया था, वे सार्वदेशिक और सार्वकालिक हैं । इन्हीं के व्यक्तिगत प्रयोग से विशिष्ट शैलियों का निर्माण होता है ।'[2] इन गुणों के अतिरिक्त गेयता के गुण का भी काव्य में महत्व रहता है । शृंगार, वीर, करुण आदि रस ही आधुनिक खंडकाव्यों में अधिक पाये जाते हैं । शृंगार, करुण आदि रसों से माधुर्य गुण तथा वीर रस से ओज गुण काव्य में भरा रहता है ।

१- हिन्दी साहित्य कोश : सं० धीरेन्द्र वर्मा, भाग १, पृ० २२४.

२- वही.

काव्य में शैली का अनुपम महत्त्व है । काव्य-विषय के साथ उसका अटूट सम्बन्ध है । जब काव्य में विषय तथा शैली दोनों परस्पर एकरूप हो जाते हैं तब शैली काव्य के बाहरी पक्ष से अधिक आंतरिक पक्ष की ओर प्रवेश पाती है ।[1] खण्डकाव्यों में वर्णनशैली की बड़ी प्रधानता रहती है । सामान्यतया उसका रूप समाख्यानक अथवा वर्णनात्मक होता है । इसमें व्यक्ति के जीवन के एक पक्ष का समाख्यान ही रहता है । किन्तु विषय के अनुकूल कवि भावाभिव्यंजक आत्मसंलापात्मक, नाटकीय, प्रगीतात्मक अथवा मनोविश्लेषणात्मक शैली का प्रयोग करता है । खण्डकाव्यों में सुगठित वस्तु विन्यास की नितांत आवश्यकता है । वस्तु का बाह्य वर्णन भी हो सकता है, उसमें पात्रों के मानसिक अन्तर्द्वन्द्वों की अभिव्यक्ति भी हो सकती है । समाख्यानक शैली के दो रूपों में प्रयोग आधुनिक खण्डकाव्यों में द्रष्टव्य है । उत्तम पुरुष में प्रमुख पात्र द्वारा प्रत्यक्ष आत्मकथात्मक प्रणाली उसमें पहला है तथा दूसरा है अन्य पुरुष में कवि के द्वारा परोक्ष वर्णन प्रणाली विधान, अर्पित जैसे खण्डकाव्यों में उत्तम पुरुष में आत्मकथात्मक प्रणाली में काव्य वस्तु का वर्णन हुआ है । सैरन्ध्री, जयद्रथ वध आदि दूसरे प्रकार के काव्य हैं । समाख्यानक शैली के दोनों ही रूपों में आख्यान का सुष्ठु एवं सुललित रूप परिलक्षित होता है । आत्मकथात्मक शैली में विरचित वर्णनों में आत्माभिव्यक्ति अधिक रहती है तथा ऐसे काव्य अधिक हृदयस्पर्शी एवं भावाभिव्यंजक रहते हैं । हिन्दी के आदिकाल से लेकर अभी भी खण्डकाव्यधारा में मुख्यतया यही समाख्यान शैली दिखायी पड़ती है । द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मकता के कारण आधुनिक काल के प्रारंभिक अथवा छायावादपूर्व खण्डकाव्यों में भी यही शैली अधिक दर्शित होती है । छायावाद युग में प्रारंभिक इतिवृत्तात्मकता को प्रश्रय प्राप्त नहीं हुआ, इस काल में गीतिशैली के काव्य निर्मित हुए । सभी युगों में परंपरा

---

1 "Style, though always external, is not to be thought as merely external". The making of literature: Scott James. p: 304.

वादी कवि अवश्य रहते हैं जो परम्परानुकूल वर्णनों में लगे रहते हैं । छायावादी एवं छायावादोत्तर युग में भी ऐसे कवि रहे जिन्होंने समाख्यान शैली में काव्य रचे ।

पुराने खण्डकाव्यों की इसी समाख्यानक शैली के कारण ही यह काव्य वर्णनात्मक माना गया है । छायावादी युग तक आकर खण्डकाव्यों का वर्णनात्मक अंश बहुत ही गौण हो गया । इस काल के काव्यों में भावप्रवणता अधिक रही । स्थूल कथावस्तु के स्थान पर सूक्ष्म कथातंत्रियाँ खण्डकाव्य में प्रयुक्त हुईं । इस पक्ष पर वर्णनात्मक अंश कम होने लगे उनके स्थान पर तीव्र भावाभिव्यक्ति के लिए अधिक उत्तम गीतिशैली प्रयुक्त होने लगी । प्रायः विषयप्रधान काव्य ही वर्णनात्मक होते हैं । छायावाद पूर्व युग के खण्डकाव्यों में विषय ही प्रधान रहे, अतः इस काल में समाख्यानशैली अधिक प्रयुक्त हुई। धीरे-धीरे खण्डकाव्य ने विषयी की ओर अपना मोड़ लिया । आचार्य बलदेव उपाध्याय ने इस तथ्य का उद्घाटन करते हुए बताया है कि ......"महाकाव्य विषयप्रधान होता है परन्तु खण्डकाव्य मुख्य विषयीप्रधान होता है जिसमें लेखक कथानक के स्थूल ढाँचे में अपने वैयक्तिक विचारों का प्रसंगानुसार वर्णन करता है ।"[१] विषयीप्रधान काव्यों के लिए गीतिशैली की उपयोगिता सिद्ध हुई तो खण्डकाव्यकारों ने भी अपने काव्यों के लिए यही शैली अपनायी । छायावादी युग के खण्डकाव्यों में पहले पहल यह शैली प्रयुक्त हुई । आँसू, ग्रंथि, सुहाग, कामिनी जैसे खण्डकाव्य इसी गीतिशैली में विरचित हैं । इन काव्यों में वस्तु के स्थान पर उसके प्रति जगी हुई आन्तरिक अनुभूति, घटना के स्थान पर उसके सूक्ष्म संकेत तथा कथा के स्थान पर उसके मूल में स्थित जीवन संवेदनाओं एवं प्रतिक्रियाओं का ही अधिक अभिव्यक्ति हुई है । इनके अंकन में समाख्यानशैली से अधिक तीव्र भावाभिव्यक्ति में सक्षम एवं गीतिगुण युक्त गीतिशैली ही अनुयोज्य रही । इस शैली में निर्मित अधिकांश काव्यों का विषय भी प्रेम, विरह जैसे भावों पर आश्रित है । इन काव्यों में घटना सहारा मात्र रहती है, कवि की अनुभूतियों की ही काव्य में प्रमुखता रहती है जिसकी

१- संस्कृत आलोचना : डा० बलदेव उपाध्याय, खण्ड-दो, पृ० २२४.

अभिव्यक्ति कवि गीतिशैली में कर लेते हैं । छायावादी युग को ही खण्डकाव्य क्षेत्र में इस शैली को विकसित करने का श्रेय है ।

अपने काव्यवस्तु के विकास करने के लिए कतिपय खण्डकाव्यकारों ने नाट्यशैली का भी उपयोग किया है । इन खण्डकाव्यों में पात्रों के आपसी संवादों से ही कथावस्तु आगे की ओर बढ़ती है । आधुनिक प्रारंभिक काल में इस शैली में खण्डकाव्य कम ही लिखे गये । 'महाराणा का महत्व' इसी शैली में विरचित है । किन्तु कतिपय अन्य खण्डकाव्यों में कथाविस्तार के यत्र-तत्र संवादों की योजना दर्शित होती है । छायावादोत्तर खण्डकाव्यों में ही इस नाट्यशैली को अधिक प्रश्रय मिला है । नाट्यशैली के खण्डकाव्यों में सम्पूर्ण काव्य का विकास नाटकीय शैली में होता है । यह नाटकीयशैली कथाप्रवाह में सहायक साबित हुई है साथ ही साथ पात्रों के चरित्र-चित्रण को स्पष्ट करने में भी यह नितांत समर्थ है । पात्रों के मुँह से ही उनका विचार एवं उसके द्वारा उनका चरित्र प्रकट हो जाता है । शिवराज, ऋतुप्रिया, संशय की एक रात, आत्मजयी, उर्वशी जैसे खण्डकाव्यों में काव्यकथा का विकास इसी नाटकीयशैली में हुआ है ।

इस नाट्यशैली के कारण इस शैली में विरचित कोई खण्डकाव्य पद्यनाट्य या गीतिनाट्य नहीं बनता । क्योंकि केवल नाट्यशैली की योजना पद्यनाट्य या गीतिनाट्य के लिए पर्याप्त नहीं । उसके लिए नाटक के गुण और अभिनेयता का गुण अनिवार्य है । इस कारण जो काव्य नाटकीय शैली में लिखे गये हैं तथा उनमें खण्डकाव्य के अन्य सारे गुण विद्यमान हैं तो वे काव्य नाट्यशैली के खण्डकाव्य ही कहे जा सकते हैं । व्यक्तियों के मानसिक-संघर्षों एवं अन्तर्द्वन्द्वों को स्पष्ट करने में भी यह शैली अधिक समर्थ है ।

काव्य क्षेत्र में मनोविज्ञान के प्रवेश के साथ खण्डकाव्यों में भी मनोविश्लेषणा-त्मक वर्णन शैली का प्रादुर्भाव हुआ । छायावाद काल के उपरांत ही इस शैली को खण्ड-काव्यों में अधिक स्थान प्राप्त हुआ है । पात्रों के मनोवैज्ञानिक चरित्र-चित्रण तथा घटनाओं

की सम्पूर्ण एवं वैज्ञानिक योजना के लिए यह मनोविश्लेषणात्मक शैली अधिक समर्थ सिद्ध हुई । तुलसीदास, रत्नावली, नहुष, पाषाणी, रत्ना की बात चांदनी रात और अजगर, सप्तसुमन आदि खण्डकाव्य इसके उत्कृष्ट उदाहरण हैं ।

पात्रों के अन्तर्द्वन्द्वों तथा मनोवैज्ञानिक विश्लेषणों के चित्रण में समाख्यान शैली तथा गीतिशैली अधिक उपयुक्त एवं प्रभावशाली नहीं जान पड़ता । यही कारण है कि मनोविज्ञान पर आधारित छायावादी एवं छायावादोत्तर खण्डकाव्यों में यह मनोविश्लेषणात्मक शैली अधिक स्वीकृत है ।

इन वर्णनशैलियों के अतिरिक्त और एक शैली का भी इस काल के खण्डकाव्यकारों ने प्रयोग किया है । वह है हास्य-व्यंग्यात्मक शैली । इसमें वस्तु का वर्णन हास्य-व्यंग्यात्मक शैली में सम्पन्न होता है । छायावादोत्तर युग के काकभुशुंडि तथा अनारी-नर खण्डकाव्य इस शैली में रचे गये हैं । इनमें खण्डकाव्य की गरिमामयी शैली का नितान्त अभाव रहता है । शैली की दृष्टि से तथा विषय की दृष्टि,से अन्य खण्डकाव्यों से अधिक इसके पाश्चात्य समरूप 'मॉक एपिक' के निकट आने वाले हैं । इस शैली के मूल में उन्मुक्त 'कवियों' की वैयक्तिक रुचि को ही काम करता हुआ दीख पड़ता है ।[1]

आधुनिक काल के प्रारंभिक काव्य अधिकांशतः इतिवृत्तात्मक रहे, उनकी रचना समाख्यान शैली में ही हुई है । छायावादी युग में काव्यजगत में भावप्रवणता का आगमन हुआ तो विषयानुकूल शैली भी परिवर्तित हो गयी, तीव्र भावाभिव्यक्ति में सक्षम गीतिशैली का उदय हुआ । छायावादोत्तर युग में मनोवैज्ञानिक विचार-विश्लेषणों की प्रमुखता का आविर्भाव काव्यजगत में हुआ तो इस काल के अधिकांश खण्डकाव्य मनोविश्लेषणात्मक शैली में लिखे गये । किन्तु परम्परावादी कवियों ने युग की मुख्य

---

1 "... style ... in its broadest sense is fundamentally a personal quality".
An introduction to the study of literature: Henry Hudson: p.27.

प्रवृत्ति की परवाह किये बिना ही समाख्यान शैली का प्रयोग अपने खण्डकाव्यों में किया है। जहाँ तक वस्तु वर्णन से तात्पर्य है वहाँ तक ही समाख्यान शैली की उपयोगिता है। आधुनिक खण्डकाव्यों के इस शैलीगत परिवर्तन के मूल में सम्मुख विषय युगप्रवृत्ति, कवि का वैयक्तिक दृष्टिकोण, आदि काम करते रहे हैं।

अलंकार

भाषा-शैली को मनोरम बनाने के लिए इस काल के कविगणों ने आवश्यक अलंकारों का प्रयोग किया है। जो अलंकृत या भूषित करे वही अलंकार है। "वास्तव में अलंकार वाणी के विभूषण हैं। इनके द्वारा अभिव्यक्ति में स्पष्टता, भावों में प्रभविष्णुता और प्रेषणीयता तथा भाषा में सौन्दर्य का सम्पादन होता है।[1]

यद्यपि काव्य में अलंकारों की स्थिति का प्रश्न विवादास्पद है, तथापि भारतीय काव्यशास्त्रियों ने अलंकार को काव्य का आवश्यक तत्व अवश्य मान लिया है। उनके बीच काव्य में अलंकारों के महत्व के बारे में मतभिन्न्य अवश्य है। आचार्य भरतमुनि ने अलंकार के रस संश्रयत्व का प्रतिपादन किया है,[2] दण्डी ने काव्य के शोभाकारक धर्मों में इसे स्वीकार किया है।[3] आचार्य उद्भट ने अलंकारों को इतना महत्व दे दिया है कि आपने रस, भाव आदि को अलंकारों के अन्तर्गत माना है। रीति को काव्यात्मा मानते हुए भी आचार्य वामन ने अलंकार को काव्य का सौन्दर्य उद्घोषित किया है।[4] सम्मुख

१- हिन्दी साहित्य कोश : सं० धीरेन्द्र वर्मा, भाग १, पृ० ६७.

२- एवमेते ह्यलंकारा गुणा दोषाश्च कीर्तिताः।
प्रयोगमेषां च पुनः वक्ष्यामि रससंश्रयम्॥ - नाट्यशास्त्रम् ७, १०८.

३- "काव्यशोभाकरान् धर्मानलंकारान् प्रचक्षते।" - काव्यादर्श २, १.

४- "रीतिरात्मा काव्यस्य।" - काव्यालंकारसूत्रवृत्ति १, २, ६.
"सौन्दर्यमलंकारः।" - काव्यालंकारसूत्रवृत्ति १, १, २.

भामह, दण्डी, उद्भट, रुद्रट आदि ने अलंकार शब्द का प्रयोग व्यापक महत्ता के साथ किया है तथा अन्य आचार्यों ने रस, रीति आदि को काव्य की आत्मा मानते हुए अलंकार को काव्य के उत्कर्ष का साधक सिद्ध किया है।

हिन्दी के रीतिकाल के आचार्यों ने भी अलंकारों के विषय में मौलिक उद्भावनाएँ नहीं की हैं, सब का सब प्रायः प्राचीन परम्परा का ही पालन किया है। आधुनिक काल में आकर विद्वानों के अलंकार सम्बन्धी मत में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ। "अलंकार के स्वरूप की ओर ध्यान देते ही इस बात का पता चल जाता है कि वह कथन की एक युक्ति या वर्णन-शैली मात्र है। यह शैली सर्वत्र काव्यालंकार नहीं कहला सकती।"[1] -- वस्तुतः शुक्लजी ने अलंकार को भाव अथवा रसानुभूति में वृद्धि करने वाला एक उपादान ही माना है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी जी ने यहाँ तक कहा है कि "कविता अपने उच्चतम स्तर को पहुँचकर अलंकार -- विहीन हो जाती है।"[2] पं० रामदहिन मिश्र ने मनोविज्ञान से इस सम्बन्ध स्थापित कर दिया है।[3]

अपनी पूर्ववर्ती परम्परा के विरुद्ध छायावादी युग में भी कवियों ने विद्रोह प्रकट किया है। सुमित्रानंदन पंत भी अलंकारों को भाषा की साज-सज्जा के लिए नहीं अपितु भावाभिव्यक्ति के लिए आवश्यक समझते हैं। "अलंकार केवल वाणी की सजावट के लिए नहीं, वे भाव की अभिव्यक्ति के विशेष द्वार हैं। भाषा की पुष्टि के लिए, राग की परिपूर्णता के लिए आवश्यक उपादान हैं, वे वाणी के आचार, व्यवहार, रीति, नीति हैं। पृथक स्थितियों के पृथक स्वरूप, भिन्न अवस्थाओं के भिन्न चित्र हैं। जैसे वाणी की झंकारें विशेष घटना से टकराकर फेनाकार हो गयी हों, विशेष भावों

१- गोस्वामी तुलसीदास : शुक्ल जी, पृ० १२७-२८.

२- हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी, पृ० ६८-६९.

३- "अधिकांश अलंकार मनोविज्ञान पर निर्भर करते हैं।"
-- काव्यदर्पण, रामदहिन मिश्र, पृ० ४३६.

हैं मानो सागर की लहरियाँ, तरुण तरंगों से फूट गयी हों, कल्पना के विशेष बहाव में पड़ आवर्तों में नृत्य करने लगी हों। वे वाणी के हास, अश्रु, स्वप्न, पुलक, हाव-भाव हैं। जहाँ भाषा की जाली केवल अलंकारों के चौखटे में फिट करने के लिए बुनी जाती है, वहाँ भावों की उदारता शब्दों की कृपण-जड़ता में बँधकर सेनापति के दाता और सूम की तरह 'इकसार' हो जाती है।"[1]

कविवर निराला भी काव्य कला को रस, अलंकार, ध्वनि आदि की सीमा में आबद्ध नहीं मानते। आपके अनुसार कला की पूर्णता इन समस्त उपादानों के समन्वित सम्मिलन में है। -- "कला केवल वर्ण, शब्द, छन्द अनुप्रास, रस, अलंकार या ध्वनि की सुन्दरता नहीं, किन्तु इन सभी से सम्बद्ध सौन्दर्य की पूर्ण सीमा है, पूरे अँगों की सत्रह साल की सुन्दरी की आँखों की पहचान की तरह -- देह की परिपक्वता-श्रीमत्ता में तरंग-सी उतरती चढ़ती हुई[2], भिन्न वर्णों की बनी वाणी में घुलकर क्रमशः मन्द मधुरतर होकर लीन होती है।"

वस्तुतः आधुनिक कवि अलंकारों को कविता का साध्य नहीं, केवल साधन ही स्वीकार करते हैं। छायावादोत्तर काल में भी अलंकार सम्बन्धी धारणा में परिवर्तन आया। छायावाद काल के चित्र-विचित्र कल्पनापूर्ण अलंकारों के विरुद्ध इस काल में प्रतिक्रिया हुई। इस काल के कविगणों ने कल्पना जगत से अधिक यथार्थ धरातल को अधिक प्रश्रय दे दिया। कोरी कल्पना के जगह वास्तविक वैज्ञानिक उपमान आदि इस काल में प्रयुक्त हुए। काव्यों की अलंकार-योजना भी यथार्थवादी ढंग से हुई तो काव्य का रूप भी अधिक यथार्थ एवं नवीन हो गया।

१- पल्लव : सुमित्रानंदन पंत, प्रवेश, पृ० १६.

२- प्रबन्ध-प्रतिमा : निराला, पृ० २७२.

हिन्दी काव्य में अलंकार सम्बन्धी जो धारणाएं क्रमशः चली आयीं, उनकी झलक हिन्दी खण्डकाव्यों की अलंकार योजना में भी स्पष्ट दर्शित होती है । हिन्दी के आधुनिक खण्डकाव्यों में आर्थिक एवं शाब्दिक दोनों ही प्रकार के अलंकारों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में प्राप्त होता है ।

<u>कुछ दृष्टांत</u>

कला-केन्द्र कोणार्क ! खड़ा तू यति-सा वन में ।
करता रवि अभिषेक प्रात के स्वर्णिम क्षण में ।।[१] (उपमा)

"रिपु के समक्ष जो था प्रचण्ड
आतप ज्यों तम पर करोद्दण्ड ।"[२]

प्रणयी मधुकर के स्वागत हित
डोल रहा था वह समीप,
ज्यों पालने में झूल रहा हो ।
मंजुल बालक भरा विनोद ।।[३]

"जब विमूर्छित नींद से मैं था जगा
(कौन जाने, किस तरह ?) पीयूष सा
एक कोमल समव्यथित निःश्वास था
पुनर्जीवन-सा मुझे तब दे रहा ।"[४] (उपमा)

१- कोणार्क : रामेश्वरदयाल दुबे, पृ० १.
२- तुलसीदास : निराला, पृ० १३.
३- गृहलक्ष्मी : गिरिजादत्त शुक्ल गिरीश, पृ० ६५.
४- ग्रंथि : सुमित्रानंदन पंत, पृ० १३.

"शशि-मुख पर घूँघट डाले
अंचल में दीप छिपाये
जीवन की गोधूली में
कौतूहल से तुम आये।"[1]

(रूपक)

"वंश-मर्यादा-कलंक-स्वरूपा
हूँ दीना हिंद नारी मैं।"[2]

"तब कर्ण द्रोणाचार्य से साश्चर्य यों कहने लगा।
आचार्य देखो तो नया यह सिंह सोते से जगा।
रघुवर विशिख से सिन्धु सम सब सैन्य इससे व्यस्त है।
यह पार्थ नंदन पार्थ से भी धीर वीर प्रशस्त है।"[3] (व्यतिरेक)

"सुनकर गजों का घोष उसको समझ निज अपयश-कथा
उन पर झपटता सिंह शिशु भी रोष कर जब सर्वथा
फिर व्यूह भेदन के लिए अभिमन्यु उद्यत क्यों न हो
क्या वीर बालक शत्रु का अभिमान सह सकते कहीं।"[4]

(अर्थांतरन्यास, विशेष से सामान्य का समर्थन)

"सुकुमार तुमको जानकर भी युद्ध में जाने दिया।
फल योग्य ही है पुत्र! उसका शीघ्र हमने पा लिया।
परिणाम को सोचे बिना जो लोग करते काम हैं।
वे दुःख में पड़कर कभी पाते नहीं विश्राम हैं।।"[5]

(अर्थांतरन्यास : सामान्य से विशेष का समर्थन)

१- आंसू : जयशंकर प्रसाद, पृ० ६.
२- गुरुलक्ष्मी : गिरिजाशंकर शुक्ल गिरीश, पृ० ६५.
३- जयद्रथ वध : मैथिलीशरण गुप्त, २१.
४-५, वही.

"क्यों छलक रहा दुःख मेरा
ऊषा की मृदु पलकों में
हाँ! उलझ रहा सुख मेरा
सन्ध्या की घन अलकों में।"[१] (भ्रांतिमान)

"जागा, जागा संस्कार प्रबल,
रे गया काम तत्क्षण वह जल,
देखा, वामा, वह न थी, अनल-प्रतिमा वह।"[२] (भ्रांतिमान)

"मेरे जीवन की उलझन
बिखरी थीं उनकी अलकें
पी ली मधु मदिरा किसने
थीं बन्द हमारी पलकें?"[३] (असंगति)

"कुछ ओर न था, कुछ छोर न था
कुछ भी कुहरे का पार न था,
थी गली कौन, थी सड़क कौन
जिस पर उसका अधिकार न था।"[४] (सन्देह)

"पर लगती थीं कि लगामों की ही
पकड़-पकड़ कर झूम गयीं
मानो कि अकेली नदियाँ ही
जो झूम रही थीं तारों पर।"[५] (उत्प्रेक्षा)

१- आँसू : प्रसाद, पृ० ४७.
२- तुलसीदास : निराला, पृ० ४६.
३- आँसू : प्रसाद, पृ० २५.
४- हीरालाल पद्मधर : सन्ध्या कुमारिया, पृ० ३२.
५- वही, पृ० ६४.

"अद्भुत कीर्ति-कथा यह पहुँची कानों तक श्यामा के भी
सीताराम गुरुजी के उस नरक-तुल्य विद्यालय की ।"[१] (विरोधाभास)

"हीरे-सा हृदय हमारा
कुचला शिरीष कोमल ने ।"[२] (विरोधाभास)

" बाँधा है विधु को किसने इन काली ज़ंजीरों से
मणिवाले फणियों का मुख क्यों भरा हुआ है हीरों से ।"[३]
(रूपकातिशयोक्ति)

" देव ! द्वार पर एक विलक्षण व्यक्ति पधारा
- - -
पगड़ी वस्त्र जीर्ण
सुदामा नाम बताता ।"[४] (स्वभावोक्ति)

"कल्पनाविस्तार कवि के दुर्लभ
चेतनोर्मियों के प्राणप्रथम ।"[५] (विशेषण-विपर्यय)

" धीरे-धीरे खिसक रही थी, श्यामा चादर काली ।"[६]
(मानवीकरण)

"वह भी जगत की बेला थी
रवि ने आँखें खोली ही थीं ।"[७] (मानवीकरण)

१- स्वतंत्रता की बलिवेदी : जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द, पृ० ३०.
२- आँसू : प्रसाद, पृ० ३०.
३- आँसू : जयशंकरप्रसाद.
४- प्रयाण : शिरिषाशंकर शुक्ल गिरीश, पृ० ४३.
५- तुलसीदास : निराला, पृ० २९.
६- कोणार्क : रामेश्वरदयाल दुबे, पृ० ६७.
७- हीरालाल पद्मधर : तन्मय बुखारिया, पृ० ९७.

शब्दालंकारों की कमनीय छटा भी आधुनिक हिन्दी खण्डकाव्यों में स्पष्ट द्रष्टव्य है। अनुप्रास अलंकार तो प्राय: खंडकाव्यों में उपलब्ध है। 'पथिक' खण्डकाव्य का प्रारंभिक पंक्ति —

— राग-रथी रवि राग-पथी अनुराग-विराग भरा।"[1]

छायावादी खण्डकाव्यों में भी शब्द एवं वर्णों का चमत्कार दर्शित होता है। "छायावादी कविता का एक-एक शब्द ध्वनिमय साकारता में बांधा है।"[2] भावाभिव्यंजना एवं अर्थव्यंजना में यमक अलंकार भी इस युग में अधिक प्रयुक्त हुए हैं। यथा —

"कामिनी-कुसुम-कर-कलित ताल पर चलता।"[3] (अनुप्रास)

"तरणि के ही संग तरल तरंग से
तरणि डूबी थी हमारी ताल में।"[4] (यमक)

इसमें पहली तरणि से तात्पर्य सूरज से तथा दूसरी से तात्पर्य नाव से है। भिन्नार्थक शब्दों की आवृत्ति के कारण यहां यमक अलंकार है।

"जो घनीभूत पीड़ा थी
मस्तक में स्मृति सी छायी
दुर्दिन में आंसू बनकर
वह आज बरसने आयी।"[5] (श्लेष)

"हे स्नेह सदैव हमारा
निकला, मानस में दूना।"[6] (श्लेष)

१- पथिक : रामनरेश त्रिपाठी, पृ० १.
२- "वर्ण - चमत्कार।
एक-एक शब्द बंधा ध्वनिमय साकार।"- गीतिका-निराला, गीत,सं० ८७.
३- तुलसीदास : निराला, पृ० १५.
४- ग्रंथि : पंत, पृ० ७.
५-६. आंसू : प्रसाद, पृ० १४, पृ० २८.

उपर्युक्त दोनों श्लेष अलंकार के उदाहरण हैं।

घनी मूल के दो अर्थ हैं -- गहरी तथा बादल के रूप वाली

दुर्दिन के भी दो अर्थ हैं -- मेघाच्छन्न दिन, तथा दुर्भाग्य के दिन।

मानस के भी दो अर्थ हैं -- हृदय तथा सरोवर।

'लो चढ़ा तार -- लो चढ़ा तार।'[1] (पुनरुक्ति)

आधुनिक खंडकाव्यों में शब्दालंकारों तथा अर्थालंकारों का प्रचुर प्रयोग हुआ है। आधुनिक प्रारंभिक अथवा छायावादपूर्व युग के खण्डकाव्यों में परम्परा से चले आने वाले अलंकार ही अधिक प्रयुक्त हैं। छायावादी युग के कवियों ने प्राचीन अलंकारों का नये ढंग से प्रयोग किया है। 'छायावादी कविता में अलंकारों का प्रयोग चमत्कार उत्पन्न करने अथवा उक्ति-वैचित्र्य दिखाने के लिए नहीं हुआ, भावोत्कर्ष तथा वस्तुओं के रूप, गुण तथा क्रिया आदि के अनुभवों की तीव्रता प्रदान करने के लिए अवश्य हुआ है।'[2] कहीं-कहीं इन कवियों की अलंकार योजना आचार्यों द्वारा निर्धारित परिभाषा का अतिक्रमण करने वाली हो गयी है, किन्तु यह कहने में कोई आपत्ति नहीं कि इन कवियों ने अलंकारों की संभावनाओं को अपने प्रयोगों द्वारा विस्तृत कर दिया है।

छायावादी काव्यों में कुछ पाश्चात्य ढंग के अलंकार भी प्रयुक्त हुए हैं जो विशेष उल्लेखनीय हैं। इनमें तीन ही प्रमुख हैं -- मानवीकरण,[3] विशेषण विपर्यय[4] एवं ध्वन्यर्थ व्यंजना।[5] जड़ में चेतना का आरोप करना ही मानवीकरण का मूल तत्त्व है।

१- तुलसीदास : निराला, पृ० ६३

२- हिन्दी की छायावादी कविता का कला-विधान, डा० कामीर सिंह 'रत्न', पृ० २३६.

३- Personification

४- Transferred Epithet

५- On a motopoeia

"फिर तम प्रकाश झगड़े में
नव ज्योति विजयिनी होती
हँसता यह विश्व हमारा
बरसाता मंजुल मोती ।"[1]

यहाँ तम, प्रकाश, विश्व आदि का मानवीकरण हुआ है ।

जब विशेषण का प्रयोग जहाँ और जिसके लिए करना है, वहाँ और उसके लिए न कर लक्षणा के सहारे अन्यत्र और अन्य के लिए किया जाता है तब विशेषण-विपर्यय (ट्रांसफर्ड ऐपीथेट) अलंकार होता है । जैसे —

"जब विमूर्च्छित नींद से मैं था जगा
(कौन जाने, किस तरह) पीयूष सा
- - - - ।"[2]

नींद तो विमूर्छित नहीं हो सकती, व्यक्ति ही मूर्छित होता है । यहाँ नींद के विशेषण के रूप में 'विमूर्छित' शब्द आया है, अतः यहाँ विशेषण विपर्यय अलंकार है ।

जहाँ नाद-सौन्दर्य अर्थबोध का प्रमुख कारण बनकर आता है वहाँ ध्वन्यर्थ व्यंजना अलंकार है । वस्तुतः पाश्चात्य शैली के ये अलंकार हिन्दी काव्य के लिए छाया-वाद युग की देन ही है ।

छायावादोत्तर युग के कवियों ने अपने काव्यों में आवश्यक एवं उपयुक्त अलंकारों का ही प्रयोग किया है । शब्दालंकारों से अधिक अर्थालंकारों की ओर ही इस काल के

१- आँसू : प्रसाद, पृ० ५७.
२- ग्रंथि : पंत, पृ० ३७.

खण्डकाव्यों की अधिक रुचि रही है । परम्परागत अलंकारों को नवीनता के साथ प्रस्तुत किया गया है । प्राचीन उपमानों को त्याग कवियों का ध्यान आधुनिक वैज्ञानिक धरातल के आवश्यक उपमानों की ओर गया है ।

चित्रात्मकता एवं प्रतीकविधान

चित्रात्मकता एवं प्रतीक विधान को छायावादी खण्डकाव्यों में विशेष प्रश्रय मिला । वस्तुत: चित्रात्मक शैली काव्य को अधिक सुन्दर बनाती है । "भाषा का चित्र-धर्म(इमेज) काव्य को रमणीय बनाता है ।"[1] छायावादपूर्वी खण्डकाव्यों में प्राय: स्थूल रंग-रेखाओं से चित्रित यथातथ्य वस्तु-चित्र ही उपलब्ध होते हैं । छायावादी युग की ओर प्रविष्ट होते होते कविता की चित्रात्मक शैली अधिक वृद्धि पा गयी । किन्तु उसके पूर्व की कविता में दृश्यमान वस्तुपरक काव्य चित्र भी मनोहारिता की दृष्टि से कुछ कम महत्व के नहीं । "पंचवटी" खंडकाव्य का एक काव्य चित्र उदाहरण रूप प्रस्तुत है --

"उसी समय पौ फटी पूर्व में पलटा प्रकृति नटी का रंग,
किरण-कंटकों से श्यामाम्बर फटा, दिवा के जागे अंग ।
कुछ-कुछ अरुण सुनहली कुछ-कुछ प्राची की अब भूषा थी,
पंचवटी की कुटी खोलकर खड़ी स्वयं क्या ऊषा थी ?"[2]

इसमें मैथिलीशरण गुप्तजी ने मानवीकरण के सहारे श्याम, स्वर्णिम एवं अरुण वर्णों के साथ विभिन्न रेखाओं का जीता-जागता सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है ।

स्वच्छन्दतावादी हिन्दी कवि रामनरेश त्रिपाठी ने अपने खंडकाव्य में यत्र-तत्र मूर्त विषयों के अमूर्त तथा अमूर्त विषयों के मूर्त चित्र प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है--

"उसी समय कमनीय एक स्वर्गीय किरण-सी बामा ।
कवि के स्वप्न-समान, विश्व के विस्मय सी अभिरामा ।।

१- "प्रभुत कवि की भाषा चित्रमय होती है । यदि भाषा चित्रमय न हो तो भावप्रकाश दुरूह हो जाता है । संगीत और चित्र से भाषा-भाव ग्राह्य बन जाते हैं । इससे अन्य भी वैसे ही रस पुष्ट होते हैं जैसे भाषा के चित्रकार भावुक कवि ।"
— काव्य में अप्रस्तुत योजना, पं० रामदहिन मिश्र, पृ० ५६.

२- पंचवटी : गुप्त जी, पृ० १८.

सिन्धु-गोद में लय से पहिले तरंगित सरिता-सी ।
आकर चकित हुई तट पर प्रियतम दर्शन की प्यासी ।।"[1]

इसमें कवि ने आशा को स्वर्गीय किरन, कवि के स्वप्न, विश्व के विस्मय एवं सिन्धु-गोद में लय से पहले तरंगित सरिता के समान चित्रित करके, मूर्त के लिए अमूर्त अथवा प्रस्तुत के लिए अप्रस्तुत का ही चित्रण किया है ।

" हे जीवन की ज्योति ! हृदय की शक्ति, आँख के तारे !
हे स्मृति के आधार ! प्राण के प्राण ! प्राण सम प्यारे !
हे मेरे मन की तरंग ! जीवन के एक सहारा !
को सुधांशु तारों अमरों से युत है मधु तुम्हारा ।"[2]

इसमें प्रियतम को जीवन की ज्योति, हृदय की शक्ति, आँख के तारे, स्मृति के आधार प्राण के प्राण एवं मन की तरंग कहकर सम्बोधित किया गया है । इन दोनों ही उदाहरणों में मूर्त के लिए अमूर्त तथा अमूर्त के लिए मूर्त (प्रस्तुत के लिए अप्रस्तुत एवं अप्रस्तुत के लिए प्रस्तुत) चित्र-विधान किया गया है ।

छायावादी खंडकाव्यों में इस चित्रात्मक शैली का चरम उत्कर्ष दीख पड़ता है । काव्य-चित्रों की विविधता एवं चित्रण पद्धति की नवीनता ही उसके चरम उत्कर्ष के मूल में काम करने वाली रही है । भाव, प्रकृति, एवं रूप आदि अनेकों वैविध्यपूर्ण चित्र इन खंडकाव्यों में उपलब्ध होता है । एक विलक्षण नारी-रूप चित्र निहारिए —

"बिखरी छूटी शफरी अलकें
निष्पात नयन नीरज पलकें
भावातुर पृथु उर की हलकें उपशमिता,

१- पथिक : रामनरेश त्रिपाठी, पृ० ९७.
२- वही, पृ० ९९.

निःशंक केवल ध्यान-मग्न
जागी योगिनी अरूप लग्न
वह खड़ी शीर्ण प्रिय-भाव-मग्न-निरुपमिता ।"[१]

एक गत्यात्मक ऋतु वर्णन — साथ-ही साथ भाव चित्र भी —

"बीते दिवस, मास भी बीते, ऋतुएँ क्रम-क्रम आयीं ।
किन्तु वियोगिन के नयनों में सावन न वे भर पायीं ।।
मन में ग्रीष्म, दृगों में पावस, तन में कम्प शिशिर था ।
जाकर कभी नहीं जो लौटा, वह मधुमास निष्ठुर था ।।
फागुन की पूनम जो कह दे, चाँद नहीं वह आया ।
करे विरहिणी का तन पुलकित, वह समीर कब आता ?"[२]

प्राकृतिक दृश्यों में सौंदर्य की खोज भी छायावादी जयशंकर प्रसाद जी ने प्रतीकों द्वारा किया है —

"प्राची के अरुण मुकुर में
सुन्दर प्रतिबिंब तुम्हारा
उस अलस उषा में देखूं
अपनी आँखों का तारा ।"[३]

इसमें प्रिय दर्शन की लालसा को कवि ने प्रतीक-व्यंजना के द्वारा व्यक्त किया है । यहाँ 'अरुण मुकुर' सूर्य के तथा 'आँखों का तारा' प्रिया के लिए प्रयुक्त हुए हैं ।

आधुनिक छायावादोत्तर युग के खण्डकाव्यों में भी प्रतीक विधान का चमत्कार दिखायी पड़ता है । यथा —

१- तुलसीदास : निराला, पृ० ५३.

२- कौणार्क : रामेश्वरदयाल दुबे, पृ० ५६.

३- आँसू : जयशंकरप्रसाद, पृ० ६७.

"पृथ्वी पर है चाह प्रेम को स्पर्श मुक्त करने की
गगन रूप को बाँहों में भरने को अकुलाता है।
गगन भूमि दोनों अभाव से पूरित हैं, दोनों के
अलग-अलग हैं प्रश्न और हैं अलग-अलग पीड़ाएं।"[१]

तथा -

"नहीं फूलते कुसुम मात्र राजाओं के उपवन में
अमित बार खिलते वे पुर से दूर कुंज-कानन में।।"[२]

छायावादोत्तर युग के खंडकाव्यों में पात्रों का प्रतीकात्मक चित्रण प्राप्त होता है। द्रौपदी तथा उत्तर जय खण्डकाव्यों में सभी पात्रों का प्रतीकात्मक अवतरण हुआ है।

आधुनिक प्रारंभिक खण्डकाव्यों में वस्तु परक चित्र की प्रचुरता से दीख पड़ती है। छायावादी काल में वैचित्र्यपूर्ण प्रतीकों का प्रयोग हुआ। इनमें से अधिकांश प्रतीक प्रकृति से चुने गये हैं। पूर्वछायावादी युग के प्रतीकों के समान ये स्थूलपरक नहीं, अपितु संकेतात्मक एवं व्यंजक हैं। छायावादोत्तर युग के खण्डकाव्यों में यौगिक प्रतीक ही अधिक प्रयुक्त हुए हैं। द्रौपदी को जीवनी शक्ति का, युधिष्ठिर को गगन, अर्जुन को अग्नि आदि का प्रतीक यौगिक, मनोवैज्ञानिक धरातल पर ही माना गया है।

छन्द

भाषा के कविता के माध्यम से एक निश्चित गति प्रदान करने का महत्वपूर्ण कार्य छन्द करते हैं। साधारणतः छन्द का अर्थ बन्धन से लिया जाता है। "छन्द ही भाषा को उसके गद्य रूप से पृथक कर देते हैं।" अक्षर, अक्षरों की संख्या एवं क्रम, मात्रा, मात्रा-गणना तथा यति-गति आदि से सम्बन्धित विशिष्ट नियमों से नियोजित पद्य रचना छन्द

१- उर्वशी : दिनकर, प्रथम अंक, पृ० ७.

२- रश्मिरथी : दिनकर, सर्ग १, पृ० २.

कहलाती है ।"[१] कविता एवं छन्द का अटूट सम्बन्ध है । प्रारंभ काल से कविता छन्द बद्ध मिलती है । गद्य एवं पद्य की यह मानो कसौटी है ।

प्रारंभिक हिन्दी काव्यों में मात्रिक छन्दों की अधिकता रही । आधुनिक काल में आकर हिन्दी की छन्द परम्परा ने एक नवीन मोड़ लिया । आधुनिक काल की उषा बेला में पं० श्रीधर पाठक ने हिन्दी काव्य को नवीन छन्दों की ओर उन्मुख किया । "घनाक्षरी सवैया इत्यादि के अतिरिक्त अनेक छन्द ऐसे हैं कि जिनमें खड़ीबोली की कविता बिना कठिनाई और सुघराई के साथ बन सकती है ।"[२] स्वयं कविवर ने अपने अनूदित प्रबन्धकाव्य "एकांतवासी योगी" की रचना लावनी छन्द में की । "भारतेन्दु की सन्ध्या अर्थात् उन्नीसवीं शताब्दी (ई०) के अन्तिम चरणों में एक नई प्रवृत्ति का प्रादुर्भाव हुआ था । वह थी संस्कृत वृत्तों (वर्णिक छन्दों) का नवोत्थान ।"[३] आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी जी इसके प्रेरक थे । "दोहा, चौपाई, सोरठा, घनाक्षरी, छप्पय और सवैया आदि का प्रयोग हिन्दी में बहुत हो चुका । कवियों को चाहिए कि यदि वे लिख सकते हैं तो इनके अतिरिक्त और छन्द भी लिखा करें ।.... हमारा अभिप्राय यह है कि इसके साथ-साथ संस्कृत काव्यों में प्रयोग किये गये वृत्तों में से दो चार उत्तमोत्तम वृत्तों का भी प्रचार किया जाय ।"[४] अतुकांत छन्दों की रचना करने की बात पर भी आपने जोर दिया ।

छायावादी युग में छन्दों में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ । काव्य में मुक्त छन्द का श्रीगणेश इसी युग से हुआ । निराला ने शास्त्र-बद्ध छन्दों का विरोध किया । आपने छन्द के पूर्व यति का प्रतिबन्ध माना, किन्तु बन्धन को अस्वीकार किया । निराला के अनुसार वही मुक्त छन्द है जिसमें कवि की अनुभूति स्वतः व्यवस्थित प्रणाली पर प्रवा-हित होती है । आपका कथन है कि --" मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी

१- हिन्दी साहित्य कोश : डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, भाग १, पृ० ३२१.

२- हिन्दुस्थान - सितम्बर २०, १८८७.

३- हिन्दी कविता में युगांतर : सुधीन्द्र, पृ० ८७.

४- रस-रंजन -- महावीरप्रसाद द्विवेदी, पृ० १६-१७.

मुक्ति होती है । मनुष्यों की मुक्ति कर्मों के बन्धन से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति छन्दों के शासन से अलग हो जाना । .... मुक्त छन्द तो वह है, जो छंद की भूमि में रह कर भी मुक्त है । उसमें कोई नियम नहीं । केवल प्रवाह कवित्त छन्द का सा जान पड़ता है । - - - मुक्त छन्द का समर्थक उसका प्रवाह ही है । - - इस छन्द में
का आनन्द मिलता है ।"[१]

काव्य में छन्द की महत्ता का वर्णन करते हुए कविवर पंत लिखते हैं —"जिस तरह नदी के तट अपने बन्धन से धारा की गति को सुरक्षित रखते, जिनके बिना वह अपनी ही बन्धनहीनता में अपना प्रवाह खो बैठती है, उसी प्रकार छन्द भी अपने नियंत्रण से राग को स्पन्दन कंपन तथा वेग प्रदान कर, निर्जीव शब्दों के रोड़ों में एक कोमल, सजल, कलरव भर, उन्हें सजीव बना देते हैं ।"[२]

छायावाद पूर्व युग के सभी खण्डकाव्य छन्दबद्ध हैं । छायावाद एवं छायावादोत्तर युग में काव्यक्षेत्र में जिस मुक्तछन्द का प्रभाव जम गया था, खंडकाव्य क्षेत्र भी उसके प्रभाव में आ गये । लेकिन मुक्त छन्द के इस युग में भी परम्परा-प्रेमी कविगणों ने अपने खण्डकाव्यों का प्रणयन छन्दबद्ध शैली में किया है । छन्दबद्ध शैली में प्रणीत काव्य दो प्रकार के होते हैं । पहला, वह काव्य जिसमें आद्यंत एक ही छन्द का प्रयोग होता है तथा दूसरा, वह जिसमें अनेक छन्दों का प्रयोग होता है ।

प्राचीन आचार्यों ने छन्दो बद्धता के गुण को प्रबन्धकाव्यों में अनिवार्य ठहराया है । आधुनिक युग में आकर प्राचीन आचार्यों की काव्य सम्बन्धी मान्यताएँ ढीली पड़ गयी, तथा प्रबन्ध काव्यों में भी मुक्तछन्द प्रयुक्त होने लगा । महाकाव्यों में हर सर्ग के अन्त में छन्द बदल जाता है तथा भिन्न-भिन्न छन्दों में सर्गों की रचना होती थी । खण्डकाव्यों

१- परिमल : सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', भूमिका.

२- पल्लव : सुमित्रानंदन पंत, भूमिका, पृ० २१.

में तो प्रत्येक सर्ग में छन्द परिवर्तन की कोई आवश्यकता तो नहीं । एक ही मार्मिक घटना के वर्णन से युक्त खण्डकाव्य में जहां तक एक ही छन्द का प्रयोग रहता है, काव्य की प्रभावशालिता उतनी ही बढ़ जाती है । यद्यपि खंडकाव्य के लिए एकछन्दात्मक रचना अनिवार्य नहीं, तथापि प्रभावाभिव्यक्ति की दृष्टि से यह वांछनीय है ।

`एकांतवासी योगी` काव्य का निर्माण `लावनी` छन्द में हुआ है । प्रेमपथिक` खण्डकाव्य `ताटंक` छन्द में तथा `मिलन` काव्य सरसी छन्द में है । अरिल्ल छन्द में स्वप्न, महाराणा का महत्व, कर्म पौरुष, मुनिलास, शिवाजी जैसे खण्डकाव्य निर्मित हुए । रोला छन्द में गजित काव्य की सृष्टि हुई है । नहुष काव्य घनाक्षरी में तथा वन-वैभव चौपाई छन्द में रचित है । `बरगद की बेटी` का छन्द ताटंक है तथा `विराग` घनाक्षरी छन्द में बना है । कवित्त छन्द में विरचित खण्डकाव्य है `उद्धवशतक` । रंग में भंग तथा वीर हमीर गीतिका छन्द में तथा जयद्रथ वध का प्रणयन हरिगीतिका छन्द में संपन्न हुआ है `आंसू` में आनन्द छन्द प्रयुक्त हुआ है तथा ग्रंथि में पीयूष वर्ष ।

उपर्युक्त सभी काव्यों में एक ही छन्द में संपूर्ण काव्य का प्रणयन हुआ है चाहे काव्य सर्गों में विभक्त हो या नहीं । कतिपय सर्गों या भागों में विभक्त खण्डकाव्यों में हर एक सर्ग में छन्द बदलता है । उदाहरण हैं किसान, अनाथ, शकुन्तला जैसे खण्डकाव्य । ऐसे ही विभिन्न छन्दों में निर्मित अन्य छन्दोबद्ध काव्य हैं रश्मिरथी, महारानी लक्ष्मीबाई, गुरुदक्षिणा, रणाकली, द्रौण, कच्छप, सौमित्र आदि ।

मुक्तछन्दों में विरचित खण्डकाव्यों में `तुलसीदास`, बंगाल का काल सम्प्रति, परिणिति, आत्मजयी, अनुगुंज ऋतुप्रिया, पद्मावन, संशय की एक रात, सम्प्रति आदि काव्य विशेष महत्व के हैं । मुक्त छन्द में अपने काव्य के प्रणयन करने वाले कवयन लिखते हैं --

"मैं मुक्तछन्द में लिख रहा था । विषय नया था,
उद्‌भावना नयी थी, दृष्टिकोण नया था । मुझे आश्चर्य नहीं हुआ
कि मेरी अभिव्यंजना ने एक नया बाना धारण किया ।"[१]

मुक्त छन्द में विरचित खण्डकाव्यों में भी प्रबन्धत्व का जो पालन हुआ है, उसी के कारण प्रबन्धकाव्यों में मुक्तछन्द को अधिक प्रश्रय प्राप्त हुआ है ।

दिनकर कृत 'रश्मिरथी' खण्डकाव्य में विभिन्न छन्दों का प्रयोग हुआ है । प्रत्येक सर्ग में एक ही छन्द रखने या सर्गांत में छन्द बदलने की प्रणाली को आपने नहीं अपनाया है । काव्य के सप्तम सर्ग में अनेकों छन्द एक साथ आ गये हैं । खण्डकाव्य मात्र में छन्द सम्बन्धी एक नवीन प्रयोग ही आपने उसमें किया है । कहीं-कहीं कतिपय खण्डकाव्यों पर मिश्र छन्दों का प्रयोग भी हुआ है । मिश्र छन्द तात्पर्य यही है कि एक साथ दो भिन्न छन्द मिलकर आ जाते हैं । उदाहरण है कुरुक्षेत्र काव्य । जैसे —

"वह कौन रोता है वहाँ
इतिहास के अध्याय पर
जिसमें लिखा है नौ जवानों के लहू का मोल है
प्रत्यय किसी बूढ़े कुटिल नीतिज्ञ के व्यवहार का
जिसका हृदय उतना मलिन जितना कि शीर्ष वलक्ष है
जो आपतो लड़ता नहीं ।"

यह तो दिनकर कृत कुरुक्षेत्र काव्य की कुछ प्रारंभिक पंक्तियाँ हैं । इसकी पहली दूसरी व छटी पंक्तियाँ १४ मात्राओं की मधुमालती छन्द हैं तथा तीसरी चौथी तथा पाँचवीं पंक्तियाँ हरिगीतिका की हैं । यों तो इसमें मधुमालती तथा हरिगीतिका छन्दों का मिश्रण है । काव्य के छन्दों में क्रम निर्वाह तो नहीं मिलता । फिर भी

१- बंगाल का काल : हरिवंशराय बच्चन, 'अपने पाठकों से', पृ० १०.

समान लयाधार दो छंदों का मिश्रण इसमें हुआ है । इसे केवल मुक्त छन्द कहना उचित नहीं होगा, इस कारण यह मिश्र छन्द कहा जा सकता है ।

हिन्दी के आधुनिक खण्डकाव्यों की छन्द-योजना का अध्ययन करने पर यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि छन्द बद्ध तथा छन्दमुक्त दोनों प्रकार के खण्डकाव्य इस काल में खूब प्रणीत हुए हैं । छन्दोबद्ध काव्यों में छन्द सम्बन्धी नियमों का पूरा पालन अवश्य हुआ है । मुक्त छन्द तो अपने आप में मुक्त हैं, ताल-लय युक्त हैं, उनके पढ़ने में विशेष आकर्षण रहता है । मुक्त छन्द के प्रयोग के कारण कतिपय खण्डकाव्यों का परम्परागत बाह्य रूप बदला अवश्य है, जो कतिपय खंडकाव्य के स्वतन्त्र विकास का ही द्योतक है ।

शिल्प सम्बन्धी अन्य बातें

मंगलाचरण

आचार्यों ने प्रबन्ध काव्य का यह लक्षण बताया है कि उसका आरम्भ मंगलाचरण से हो । महाकाव्य के लक्षणों में मंगलाचरण, वस्तुनिर्देश, सज्जन स्तुति आदि भी बताये गये हैं ।

"आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा ।।"[१]

आधुनिक युग में काव्य सम्बन्धी अनेकों पुरानी धारणाएं ढीली पड़ गयीं, और यही दशा मंगलाचरण की भी हुई है । आधुनिक काल में आकर मंगलाचरण काव्य का अनिवार्य अंग नहीं रह गया ।

आधुनिक युग में प्रणीत खण्डकाव्यों पर एक विहंगम दृष्टि डालने पर यह स्पष्ट लक्षित हो जाता है कि इस काल के अधिकांश खंडकाव्यकारों ने मंगलाचरण के

१- साहित्यदर्पण : विश्वनाथ - सं० श्रीकृष्ण मोहन ठाकुर, पृ० ६३३-६३६.

प्रति उपेक्षा भाव ही दिखाया है । कतिपय खण्डकाव्य भी मंगलाचरण से शुरू होते हैं — रंग में भंग, बक संहार, वनवैभव, गौराबध, उदवशतक, अजित, नहुष आदि उनमें आते हैं । अपने अधिकांश काव्यों में मंगलाचरण की सफल योजना करने वाले मैथिलीशरण-गुप्त जी ने अपने 'पंचवटी' खंडकाव्य में इसकी योजना नहीं की है । प्रसाद (आंसू), पंत (ग्रंथि, मुक्तियज्ञ), बच्चन (बंगाल का काल), [illegible] (बरगद की बेटी, सौन्दर्य-कथा) आदि ने भी अपने खण्डकाव्यों में इसकी उपेक्षा की है ।

परम्परानुसार मंगलाचरण में ईश्वर स्तुति की रहती है । यथा —

'हे रावणारि रघुवंश-रवि
विश्वेश्वर, कल्याणधाम,
दें इस जीवन-संग्राम में
हमें अभय करके विजय ।।'[1]

परम्परा के प्रति विद्रोह के इस नवयुग (छायावादोत्तर युग) में मानव के स्तुतिगान से कतिपय खण्डकाव्यों का श्रीगणेश हुआ है । 'रश्मिरथी' नामक अपने खण्डकाव्य में उपेक्षित मानव-कर्ण-की स्तुति करके रामधारी सिंह दिनकर ने मंगलाचरण सम्बन्धी पुरानी परम्परा के विरुद्ध विद्रोह किया —

'जय हो, जग में जले जहाँ भी नमन पुनीत अनल को,
जिस नर में भी बसे, हमारा नमन तेज को, बल को ।।'[2]

'तप्तगृह' नामक खण्डकाव्य में भी केदारनाथ मिश्र प्रभात ने मानव की वन्दना प्रस्तुत की है ।[3]

यह प्रवृत्ति आधुनिकता के प्रभाव से हिन्दी खण्डकाव्यों में आगत नवीन क्रांति ही है ।

१- मौर्य विजय : सियारामशरण गुप्त, पृ० १.
२- रश्मिरथी : दिनकर, पृ० १.
३- तप्तगृह : केदारनाथ मिश्र 'प्रभात', पृ० १.

प्रबन्धकाव्यों में कथावस्तु की सफल संयोजना की बड़ी प्रधानता रहती है। प्रबन्धकाव्यों में वस्तु की संयोजना जिन भिन्न-भिन्न भागों में होती है, वे ही भाग सर्ग नाम से अभिहित किये जाते हैं। महाकाव्य के लक्षण में आचार्य विश्वनाथ ने यह स्पष्ट घोषित किया है कि उसमें आठ से अधिक सर्ग होने चाहिए।[2] आठ सर्गों से अधिक सर्ग संख्या का निर्धारण करके आचार्य विश्वनाथ ने सचमुच महाकाव्य के बृहद् आकार को ही सुरक्षित रखा है। इस प्रकार की कोई सीमा खण्डकाव्य के लिए निश्चित नहीं। "उसकी कथा सर्गों में होकर गुंथी जा सकती है और उसके बिना भी उसका प्रणयन हो सकता है।[1]" आचार्यों का मंतव्य यही रहा कि खण्डकाव्य में आठ सर्ग से कम सर्ग ही रहें। सर्ग संबंधी किसी निश्चित विधि के अभाव में आकार सम्बन्धी जितना प्रचुर वैविध्य खण्डकाव्य के क्षेत्र में पाये जाते हैं उतना अन्य किसी भी काव्यरूप में नहीं। एक ओर उर्वशी, कुरु-क्षेत्र, चित्तौड़ की चिता जैसे बृहदाकार खण्डकाव्य विरचित हुए, जिनकी कथावस्तु अनेक सर्गों में विभाजित है तो दूसरी ओर रंग में भंग, पंचवटी, तुलसीदास, बापू की बेटी जैसे अनेकों लघु आकार के खण्डकाव्य भी लिखे गये, जिनका कथानक सर्गों में विभाजित नहीं है।

इस भाँति दो प्रकार के खण्डकाव्य प्रणीत हुए -- सर्गबद्ध एवं सर्गयुक्त या सर्गरहित। सर्ग योजना के बारे में किसी निश्चित नियम के अभाव में कवियों ने अपने विषय के विस्तार के अनुकूल उसे सर्गों में बद्ध किया है। सर्गरहित खण्डकाव्य भी कुछ प्रणीत हुए हैं। जो खण्डकाव्य विभिन्न सर्गों में प्रणीत हुए हैं, कतिपय में उन सर्गों का नामकरण भी हुआ है। मिलन, पथिक, स्वप्न, कौन्तेय कथा तप्तगृह, चित्तौड़ की चिता,

---

१- काव्य रूपों के मूलस्रोत और उनका विकास : डा० शकुन्तला दुबे, पृ० ३२७.

२- "नातिस्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह।" - साहित्यदर्पण : विश्वनाथ, - पृ० ३१५.

कर्ण, रश्मिरथी, कुरुक्षेत्र, महारानी लक्ष्मीबाई, गौरावध, कोणार्क दशानन, कैकेयी, जयद्रथ-वध, नहुष, नकुल, द्रौपदी, परीक्षित् पाषाणी जैसे अधिकांश खण्डकाव्य सर्ग-बद्ध हैं । सर्गमुक्त खण्डकाव्यों में पंचवटी, वीरबाला पद्मधर, कर्मसंहार, कारा, मुक्तिपथ, स्वतंत्रता की बलिवेदी, रत्ना की बात, चाँदनी रात और अजगर, भस्मांकुर जैसे काव्य आ जाते हैं ।

सर्गबद्ध खण्डकाव्यों की सर्ग संख्या में भी किसी निश्चित नियम का अनुष्ठान नहीं दीख पड़ता है । तीन से लेकर चौदह तक सर्ग वाले खण्डकाव्य उपलब्ध हैं । खण्ड-काव्य के सामान्य लक्षण के अनुसार तो इसमें सात से अधिक सर्ग नहीं होना चाहिए । लेकिन आधुनिक युग तो प्रयोग वैविध्य का युग रहा है, यहाँ नहीं सर्ग संख्या काव्य-रूप-निर्धारण का अनिवार्य नियम नहीं है । कवि व अपनी रुचि एवं अपने विषय के अनुकूल काव्य का विस्तार करते हैं । खण्डकाव्य में मानवजीवन के किसी एक ही पक्ष के चित्रण की गुंजाइश रहती है, इसका रूप जितना ही लघु होगा, उसके प्रभाव एवं भावों का घनत्व उतना ही अधिक होगा ।

सर्गबद्ध खण्डकाव्यों में मिलन, पथिक, स्वप्न, मधु, सिद्धराज, कोणार्क आदि पांच-पांच सर्गों में विभक्त हैं । कर्ण, प्रवीर, रश्मिरथी, कुरुक्षेत्र, गौरावध दशानन, कैकेयी, नहुष, अशोक आदि खण्डकाव्यों में सात सर्गों का विधान हुआ है । भूमिजा तथा प्रह्लाद में आठ-आठ सर्ग हैं, तप्तगृह एवं चित्तौड़ की चिता` में वस्तु का संगठन ग्यारह सर्गों में सम्पन्न हुआ है तथा "चित्तौड़ की चिता" में एक ही मार्मिक घटना का वर्णन चौदह सर्गों में किया गया है । "कौन्तेय-कथा" तथा "नहुष" में विभिन्न सर्गों का नामकरण भी हुआ है । वर्ण्य विषय या प्रसंगों के आधार पर ही प्रायः नामकरण हुआ है ।

कतिपय खण्डकाव्यों की कथावस्तु अनेकों शीर्षकों में विभक्त हुई हैं । कौन्तेय पौरुष की कथावस्तु छोटे-छोटे २५ शीर्षकों में, 'सिंहद्वार' की नौ शीर्षकों तथा शिवाजी की कथावस्तु १२ शीर्षकों में बांटी गयी है ।

सर्ग के लिए आधुनिक खण्डकाव्यों में और भी कतिपय नाम प्रयुक्त हुए हैं, यथा-

१- भाग : (लक्ष्मा-शक्ति, अनारी-नर, अजित ।)

२- उच्छ्वास : (रूप-छाया)

३- सोपान : (परीक्षित)

४- खण्ड : (सौमित्र, आत्मोत्सर्ग)

५- स्पर्श : (पाषाणी)

६- आहुति : (सांध्या टीपे, प्रणार्पण ।)

आधुनिक काल के पूर्व युगीन खण्डकाव्यों, विशेषकर मध्यकालीन खण्डकाव्यों में भी सर्गों के 'विलास', अंक, अध्याय आदि नामकरण द्रष्टव्य है ।

सर्गबद्ध एवं सर्गमुक्त दोनों ही प्रकार के खण्डकाव्यों में कथावस्तु के प्रारम्भ, विकास एवं परिसमाप्ति का सुगठित रूप विद्यमान रहता है । सर्ग सम्बन्धी जो वैविध्य आधुनिक खण्डकाव्य क्षेत्र में दृष्टिगोचर होता है वह वस्तुतः खण्डकाव्य के रूप विकास का ही द्योतक है । सर्ग के क्षेत्र में यह तो आधुनिक खण्डकाव्यकारों की ओर से परम्परा-विरुद्ध नवीन प्रयोग ही है ।

नामकरण

साहित्यदर्पणकार के अनुसार प्रबंध काव्य (महाकाव्य) का नाम[1] कवि के नाम से, चरित्र के नाम से अथवा चरित्र नायक के नाम से होना चाहिए ।

आधुनिक काल में प्रणीत खण्डकाव्यों के नामकरण के मुख्यतः चार आधार रहे हैं ।

१- "कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा ।।" -
- साहित्य दर्पण : विश्वनाथ, पृ० ३२६.

(१) प्रमुख पात्र।

(२) प्रमुख घटना।

(३) प्रमुख घटनास्थल।

(४) प्रमुख भाव, विचार अथवा प्रतीक।

छायावाद पूर्व युग में प्रमुख पात्र के आधार पर निम्नलिखित खण्डकाव्यों के नामकरण बने —

एकांतवासी योगी, श्रांत पथिक, हरिश्चन्द्र, प्रेम-पथिक, किसान, महाराणा का महत्त्व, अनाथ, पथिक, एवं वीर हमीर। छायावाद युग में प्रमुख पात्र के आधार पर ऊर्मिला, सैरन्ध्री, उद्धवशतक, सिद्धराज, तुलसीदास, नहुष आदि खण्डकाव्यों का नामकरण हुआ।

छायावादोत्तर युग में – नकुल, कपिल, बरगद की बेटी, कर्ण, किलिन्का, अशोक, रश्मिरथी, कैकेयी, शकुन्तला, पांचाली, सती सावित्री, तात्या टोपे, गुरुलक्ष्मी, वामन, वीर बाल पद्मधर, कच-देवयानी, अमृतपुत्र, अनुप्रिया, दानवीर कर्ण, द्रौपदी, ऊर्मिला, प्रह्लाद, रणचण्डी, उर्वशी, कन्हैया-कथा, महारानी लक्ष्मीबाई, रत्नावली पाषाणी, सौमित्र, कूबरी, आत्मजयी, सुनन्दा, रत्ना की बात, द्रोण, परीक्षित, कुटिया का राजपुरुष, अनारी-नर, सुवर्णा, प्रवीर, शिवाजी, मत्स्यांकुर जैसे खण्डकाव्यों का नामकरण काव्य के प्रमुख पात्रों के आधार पर हुआ है।

प्रमुख घटना के आधार पर भी आधुनिक काल में खण्डकाव्यों का नामकरण हुआ है।

छायावाद पूर्व युग में — रंग में भंग, जयद्रथ-वध, मौर्य-विजय, द्रौपदी-चीरहरण, मिलन, अभिमन्यु का आत्मबलिदान आदि खण्डकाव्यों का तथा छायावादी युग में —

कीचक-वध, अभिमन्यु-वध, कंस संहार, वन-वैभव, आत्मोत्सर्ग, अभिमन्यु पराक्रम जैसे काव्यों का एवं छायावादोत्तर युग में —

विषपान, बंगाल का काल, गौरा-वध-शल्य-वध, प्रयाण, मीरी का पीहर, अग्निपथ, प्रेम-विजय, गुरुदक्षिणा, प्राणार्पण, बंधन की एक रात, स्वतंत्रता की बलिवेदी, मुक्तियज्ञ, कल्मूष प्रतिपदा, उत्तर-पथ आदि खण्डकाव्यों का नामकरण इस आधार पर हुआ है। काव्य में वर्णित प्रमुख घटनास्थल को आधार बनाकर भी खण्डकाव्यों का नामकरण कवियों ने किया है। यथा --

छायावादी युग में --

पंचवटी, तथा छायावादोत्तर युग में काबा और कर्बला, कारा, सप्तसूत्र, सिंहद्वार, कोणार्क, चित्रकूट जैसे खण्डकाव्यों का नामकरण ऐसे ही हुआ है।

बहुत ही कम खण्डकाव्यों का नामकरण प्रमुख भाव या विचार के आधार पर हुआ है। उनमें आँसू, स्वप्न, सुहाग, रूपछाया, वनवासिनी, क्रोध पौरुष, आदि आते हैं। ग्रंथि, कुरुक्षेत्र, चाँदनी रात और अजगर आदि खण्डकाव्यों का नामकरण प्रतीकात्मक हुआ है। पहला प्रेम का तथा दूसरा विचारों का प्रतीक बनकर आता है। जैसे महाभारत युद्ध का प्रतीक हो गया है वैसे ही कुरुक्षेत्र भी[1]।"

स्पष्ट है ऊपर बताये गये आधारों पर ही आधुनिक खण्डकाव्यों का नामकरण हुआ है। वर्ण्यविषय से सदा शीर्षक का सम्बन्ध रहता ही है। आधुनिक खण्डकाव्यों के शीर्षक तो सब रूप में सफल हैं सार्थक भी। वस्तुतः इस काल में कवि के नाम से कोई खण्डकाव्य नहीं मिलता।

समग्रतः विचार करने पर ज्ञात होगा कि आधुनिक काल के खण्डकाव्यकारों ने अपने काव्यों के शिल्पविधान में बहुत आस्था दिखायी है। नयी हुई मंजु शैली के प्रयोग, अलंकारों की कमनीय योजना, छन्दप्रयोग आदि में आधुनिक खण्डकाव्यकार खूब सफल दिखे

१- दिनकर : सं० सावित्री सिन्हा, दिनकर साहित्य : एक सामान्य परिचय, पृ० ३७.

है। छायावादी युग के खण्डकाव्य अपने कलासौष्ठव के सप्राण प्रमाण प्रस्तुत करने वाले है। वस्तुतः "छायावाद खड़ीबोली का कलायुग है।"[१] छायावादोत्तर युग में कविगणों का ध्यान काव्य के कलापक्ष की सजावट से अधिक उसकी आन्तरिक विशेषताओं की ओर ही रहा है। इन कवियों ने परिवेश तथा विषय के अनुकूल प्रौढ़ एवं गंभीर रूप से ही काव्य के कला-पक्ष का संयोजन किया है। अतः इनमें काव्य-कला-पक्ष की पूर्ण सुरक्षा हुई है।

१- ज्योति विहग - शांतिप्रिय द्विवेदी, पृ० ११.